अनुसार भिन्न-भिन्न यज्ञ किये जाते हैं। कर्ताभेद के अनुसार कल्पित नाना यज्ञ-श्रेणियाँ केवल बाह्यरूप से यज्ञों का वर्गीकरण करती हैं। यथार्थ यज्ञ का एकमात्र तात्पर्य तो 'यज्ञ' नामक परमेश्वर श्रीविष्णु का सन्तोष है। यज्ञों के मुख्य रूप से दो वर्ग हैं—द्रव्ययज्ञ और ज्ञानयज्ञ। कृष्णभावनाभावित महापुरुष भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए सर्वस्वत्याग कर देते हैं, जबकि क्षणिक प्राकृत सुख के अभिकांक्षी अन्य मनुष्य इन्द्र, सूर्यादि को प्रसन्न करने के लिए अपनी लौकिक सम्पत्ति का यजन करते हैं। इनके अतिरिक्त, निर्विशेषवादी तो निराकार ब्रह्म में विलीन होकर स्वरूप का ही यजन कर डालते हैं। देवताओं को ब्रह्माण्डीय तेज, जल, प्रकाशादि प्राकृत क्रियाओं की व्यवस्था के लिए श्रीभगवान् ने नियुक्त किया है। फिर भी भोगों के अभिलाषी वैदिक कर्मकाण्डमय यज्ञों के द्वारा देवोपासना करते हैं। इस कोटि के मनुष्य 'बहवीश्वरवादी' कहलाते हैं। दूसरी ओर, निर्विशेषवादी देव-वपुओं को अनित्य मानते हुए ब्रह्माग्नि में अपने स्वरूप का ही यजन कर ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। ये निर्विशेषवादी ब्रह्मतत्त्व के चिन्मय स्वरूप को जानने के लिए दार्शनिक मनोधर्म के परायण रहते हैं। इस प्रकार, सकाम कर्मी इन्द्रियतृप्ति के लिए लौकिक स्वत्व का यजन करते हैं, और निर्विशेषवादी ब्रह्म में विलय के लिए अपनी प्राकृत उपाधियों का यजन करता है। निर्विशेषवादी के लिए यज्ञाग्नि ही परब्रह्म है एवं ब्रह्माग्नि में स्वरूप विलय होना यज्ञार्पण है। परन्तु अर्जुन की श्रेणी के कृष्णभावनाभावित भक्त श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए अपने सर्वस्व का अर्पण कर देते हैं। इस प्रकार आत्मस्वरूप सहित भक्त का सब कुछ श्रीकृष्ण की प्रीति-सम्पादन में समर्पित रहता है। अतएव भक्त परम योगी हैं; परन्तु उसका पृथक् स्वरूप नष्ट नहीं होता।

3/4

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।।२६।।

श्रोत्रादीनि=श्रोत्र आदि; **इन्द्रियाणि**=इन्द्रियों को; **अन्ये**=दूसरे; **संयम**=संयमरूप; **अग्निषु**=अग्नि में; **जुह्वति**=अर्पित करते हैं; **शब्दादीन्**=शब्द आदि; **विषयान्**=इन्द्रियतृप्ति के विषयों का; **अन्ये**=दूसरे; **इन्द्रिय**=इन्द्रियों की; **अग्निषु**=अग्नि में; **जुह्वति**=यजन करते हैं।

अनुवाद

उनमें से कुछ श्रवणादि क्रियाओं और इन्द्रियों का चित्तसंयमरूपी अग्नि में यजन करते हैं तो दूसरे शब्दादि इन्द्रियविषयों का इन्द्रियरूपी अग्नि में हवन करते हैं।।२६।।

तात्पर्य

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—मानव जीवन के इन चारों आश्रमों का प्रयोजन पूर्ण योगी बनने में मनुष्य की सहायता करना है। मनुष्य योनि पशुओं के समान इन्द्रियतृप्ति करने के लिए नहीं है। अतएव मानव जीवन के ये चारों आश्रम